राजनीतिक समाज, सत्ता और सियासत

पार्थ (चटर्जी) के आगे जहाँ और भी हैं*

आदित्य निगम

तकरीबन डेढ़ दशक पहले पार्थ चटर्जी ने भारतीय राजनीतिक चिंतन के इतिहास में या शायद उत्तर-औपनिवेशिक राजनीतिक चिंतन के इतिहास में एक नये क़िस्म के सफ़र का आग़ाज़ किया था। पिछले कई दशकों से चटर्जी भारतीय राजनीति और उससे पैदा होने वाली कई पहेलियों से बौद्धिक जद्दोजहद करते आये हैं और ख़ास कर आठवें दशक से मातहत तबक़ों और समूहों की सियासत से उनका विशेष सरोकार रहा है।[1] इन्हीं तमाम चिंताओं को एक जगह समेटते हुए और अपने दशकों लम्बे शोध के नतीजों पर मनन करते हुए उन्होंने राजनीतिक समाज की अपनी उस अवधारणा को शक्ल देने की शुरुआत की जिसे आज व्यापक तौर पर स्वीकार किया जाने लगा है। इस स्वीकृति के कई रूप हैं। जहाँ कई लोगों ने इसे ग़ैर-पश्चिमी समाजों के विश्लेषण में एक

---

* इस लेख की शुरुआत चूंकि पार्थ चटर्जी की नयी किताब *लीनियेजिज़ ऑफ़ पॉलिटिकल सोसाइटी* की समीक्षा के तौर पर हुई थी इसलिए इसे स्वतंत्र लेख तो नहीं कहा जा सकता है. मगर क्योंकि लेख का फलक अनिवार्यत: काफी फैल गया है और इसमें राजनीतिक समाज के ज़रिये भारतीय राजनीति के कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं के साथ-साथ कुछ सैद्धांतिक सवालों पर चर्चा ज़रूरी हो गयी इसलिए अब यह सिर्फ़ एक समीक्षा लेख भर भी नहीं है. शायद दोनों के दरमियान कुछ है. इस पर्चे के मसविदे पर मुझे अभय कुमार दुबे, राकेश पाण्डे, कमल नयन चौबे और नवीन चंद्र की टिप्पणियाँ प्राप्त हुईं जो पर्चे को तैयार शक्ल देने में बहुत मददगार साबित हुईं. मैं उन सभी का बहुत आभारी हूँ.

[1] यहाँ मातहत तबक़ों या समूहों से हमारी मुराद सबाल्टर्न समूहों से है. सबाल्टर्न के लिए निम्न वर्ग का प्रयोग, जैसा सबाल्टर्न स्टडीज़ के अनुवाद में किया गया है, सही नहीं है. सबाल्टर्न के शाब्दिक अर्थ का और ख़ुद सबाल्टर्न स्टडीज़ में जिस अर्थ में उसका प्रयोग होता है, उस लिहाज़ से आशय सिर्फ़ निम्नता से नहीं बल्कि सत्ता संबंधों में मातहत दर्ज़े से है.